International Journal of Humanities and Social Science Invention
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 5 Issue 8 || August. 2016 || PP.73-79

कश्मीरः राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परंपरा

डॉ. हनुमान सहाय मण्डावरिया
व्याख्याता राजनीति विज्ञान,राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय जिला दौसा, राज्य राजस्थान (भारत)

कश्मीर का इतिहास एकदम लुप्त हो गया है। कुछ लोग यह आग्रह करते हैं कि कश्मीर के लोग यहूदी जाति से सबन्धित है। इतना ही नहीं उन्हें पूर्ण विश्वास है कि इजराईल का एक खोया हुआ कबीला कश्मीर आकर ही बस गया था और अपने सिद्घांत की पुष्टि में कहते हैं कि कश्मीरियों की लबी और पतली नाक, उनकी मुखाकृति आदि बिल्कुल यहूदियों से मिलती–जुलती है। जहाँ तक कश्मीरियों के उद्मग के बारे में पूरी अन्वेषणा नहीं की जाती तब तक उपर्युक्त धारणा का विरोध नहीं किया जा सकता। किन्तु इतना कह सकता है कि विश्लेषण करने से पूर्व किसी परिणाम तक पहुँचना कुछ उचित प्रतीत नहीं होता। इसमें संदेह नहीं कि कश्मीरियों का रूप रंग सुन्दर है, और विशेषकर महिलाएँ रमणीय हैं। लेकिन उनकी तुलना अन्य गौरी जातियों से भी की जा सकती है, केवल यहुदियों से ही नहीं। अधिक कुछ न कहकर अलबरूनी के लिखित वृतान्त का ही आश्रय लिया जा सकता है।

कश्मीरी कभी–कभी विदेशी लोगों को अपने देश में आने देते थे, विशेषकर यहुदियों को, किन्तु अब स्थिति यह है कि किसी अज्ञात हिन्दू को भी वहाँ बसने नहीं देते। यह है उनका कथन। इसलिए कश्मीरियों की सांस्कृतिक पैमाइश करने की अगर सुविधा प्राप्त हो तो कुछ न कुछ ऐतिहासिक सामग्री अवश्य मिलेगी। इसका यथार्थ रूप से अध्ययन करना बड़ा जटिल कार्य हैं, क्योंकि पठान राज्य में कश्मीर की पुरातन पोथियाँ बोरियों में भरकर डल सरोवर में डुबो दी गई। शेष बचे है कल्हण की राजतरंगिणी और नीलमत पुराण, लेकिन वे भी इस समस्या को सुलझाने में कोई विशेष सहायक नहीं हैं।

राजतरंगिनी और नीलमत पुराण में निर्देशित किया है कि कश्मीर घाटी पुरातन काल में एक बहुत बड़ी झील थी जिसे सतीसर कहते थे। कश्यप मुनि ने पहाड़ को काटकर पानी का निस्सार किया, और सरोवर के सूख जाने पर जो भूमि निकल आई उसका नाम कश्यप–मीरा जो बाद में कश्मीर बन गया– रखा और उसे आबाद किया। उस समय वहाँ दो लड़ाकू जातियाँ यक्ष और पिशाच रहती थी, जो कश्मीर के ब्राहणों को भयभीत करती थीं। इससे यह सुपरिलक्षित होता है कि वहाँ के अतिरिक्त अन्य लोग भी रहते थे, जिनके नाम राजतरंगिनी में निशाद, दर्द, भूट, भिक्ष और दमर ही दिए गए हैं।

अधिकतर लोगों का मत है कि कश्मीरी आर्य जाति की संतान है। मेरा विश्वास है कि आर्य लोगों के सही लक्षण अगर कही दिखाई पड़ते है तो केवल कश्मीर में। किन्तु यह कहना कि आर्य जाति यहाँ आकर कैसे बसी और फली–फूली, जटिल कार्य हैं। इसमें संदेह नहीं कि आधुनिक कश्मीरी का, बौद्ध, यूनानी, ईरानी इत्यादि जातियों के मेल–मिलाप से ही उद्भव हुआ है और इनकी बहुमुखी प्रतिभा तथा सहनशीलता दीर्घकाल से ज्यों की त्यों चली आ रही है। यहाँ सर्वप्रथम नाग जाति ही अस्तित्व में आई, जिनमें नागार्जुन, नागबोधि आदि जैसे व्यक्ति पैदा हुए। बौद्ध के देहावसान के उपरांत जब भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ तो कश्मीर में सबसे पूर्व नाग लोग ही उसके अनुयायी बने, लेकिन दो धर्मो के बीच कोई संघर्ष नहीं हुआ। बौद्धधर्मावलबी होते हुए भी यहाँ के शासकों ने बौद्धविहारों के साथ–साथ हिन्दुओं के मन्दिरों का निर्माण करवाया और उन्हे अपने देवी–देवताओं की उपासना करने में कोई बाधा नहीं डाली। इसी प्रकार जब बौद्ध धर्म का पतन हुआ और ब्राहण धर्म ने फिर गौरव का स्थान प्राप्त किया, तब भी इसका कोई विरोध नहीं हुआ। शाह हमदाम के साथ चौदहवीं शताब्दी में इस्लाम का आगमन भी किसी को नहीं अखरा। मुसलमानों के विशेषकर पठानों के शासनकाल में, कश्मीर पर अन्धकार के बादल छा गए और हिन्दुओं पर अत्याचार किए गए। तब मुसलमानों ने हिन्दुओं को आश्रय दिया और उनका दुरूख दूर करने की चेष्टा की। वास्तव में हिन्दू और मुसलमान संस्कृति के समिश्रण से एक नई ही विचारधारा चल पड़ी जिसका अभिव्यंजन सुन्दर ढंग से ललेश्वरी आदि ने की।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि कश्मीरियों की सामाजिक परपरा की जड़ ह्मस्र पहुँचने का प्रयत्न अभी तक नहीं हो सका है। विदेशी विद्वानों ने इस ओर कुछ प्रयत्न किया है, किन्तु उनमें पर्याप्त त्रुटियाँ पाई गई। अनेकों ने तो वस्तुस्थिति को समझे बिना ही अपना मत प्रकट किया और शासन कार्य के सुभीत के लिए सत्य को छिपाने की कोशिश की। कई पण्डितों ने विश्लेषण करके पता किया कि यहाँ कि अनेक जातियाँ आर्य आक्रमणकारियों के परिवर्तित रूप हैं। अधिक विस्तार से कहने की आवश्यकता नहीं है, इसलिए केवल कश्मीर घाटी के लोगों के बारे में ही बात करना उचित होगा, क्योंकि बाहर से आए।

कश्मीर के जिन्हें पण्डित कहते हैं, अनेक तासुबी शासकों द्वारा उद्विग्न किए गए। इसलिए अधिकतर अपनी जन्म भूमि को छोड़कर चले गए। पठान शासनकाल में, जनश्रुति के अनुसार, घाटी में के कुल ग्यारह घर शेष रह गए थे। जैतुलावदीन ट्टबडशाह' के सुनहरे शासनकाल में कश्मीरी पण्डितों का पुनः समान होने लगा और बहुत से लोग वापस लौट आए। उन्होंने अपने को बानवासी कहा और यहाँ के लोगों को मलवासी किन्तु आपस में मेल–जोल, शादी–विवाह करने में कोई रूकावट नहीं रखी।

वास्तव में पण्डित लोग 133 गोत्रों में बँटे हुए है और इतने ही श्रेष्ठ मुनियों की सन्तान अपने को मानते हैं। लेकिन सामाजिक प्रतिष्ठा का गोत्र से कोई सबन्ध नहीं है। वह व्यवसाय पर आधारित है। एक ही गोत्र में शादी रचाने का रिवाज नहीं है। गोत्र का ठीक करना कोई साधारण काम नहीं, क्योंकि कश्मीरियों में उपनाम धारने की प्रथा चली है। पण्डित आनन्द कौल ने अपनी एक पुस्तक में इस प्रकार कहा है–

वासुदेव के घर में एक तूत तूल का वृक्ष था इसलिए लोगों ने उसका उपनाम वासुदेव तूल रखा। इस उपनाम से छुटकारा पाने के लिए उसने तूत के पेड़ को काटा लेकिन उसका मूल शेष रह गया और लोगों ने उसका नाम बदलकर वसुदेव मोड़ रखा। फिर उसने मूल को भी बाहर निकलवाया, लेकिन वहाँ रह गया, इसलिए लोगों ने उसका नया उपनाम वसुदेव खोड़ रखा। वसुदेव ने गड्ढे में फिर जरूरत से ज्यादा मिट्टी डाली और उस स्थान पर डेर (टेंग) बन गया। लोग उसका पीछा छोड़ने वाले तो थे नहीं, उसका नाम फिर बदलकर वसुदेव टेंग रखा। विवश होकर उसने अन्य प्रयास नहीं किया। अब भी उसके आनूपूर्विक वंशीय टेंग कहलाते हैं।

कश्मीरी पण्डितों ने सदा से नौकरी के पेशे को अपनाया है, इसलिए अब भी सरकारी नौकरी करने वाले को पर्याप्त समान प्राप्त है। मुसलमानों के काल में उन्होंने फारसी और उर्दू में महारत प्राप्त की और उच्च पदवियाँ प्राप्त की। यद्यपि पठान, सिक्ख आदि शासकों ने उन पर मनमाने अत्याचार किए, किन्तु शासन कार्य इन्हीं के भरोसे चलाते थे। इनमें शिक्षा का बहुत प्रचार है और पुरूषों में कम–से–कम 90 प्रतिशत शिक्षित है। जो कश्मीरी पण्डित पठानों के आतंक से तंग आकर भारत के भिन्न–भिन्न हिस्सों में फैल गए, वे बड़े पण्डित, शासनकर्ता और राजनीतिज्ञ बने। प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू आदि लोगों के विषय में कुछ कहना उचित नहीं होगा, क्योंकि उनका तो हमारे जीवन से क्षण–क्षण का सबन्ध है। कश्मीरी पण्डितों को अपनी जन्म–भूमि से हद से ज्यादा प्रेम है। यद्यपि बहुत से शासकों के हाथों इनका शोषण होता रहा है, इन्होंने कश्मीर से बाहर जाकर जीविका ढूँढने का प्रयत्न नहीं किया। कुछ हद तक इनका आलस्य और प्रकृति प्रेम इसके लिए उत्तरदायी है। परन्तु अब परिस्थिति बदल गई है। मुसलमानों की शिक्षा का स्तर भी ऊँचा हो रहा है और उन्हें सरकारी नौकरियों में अपना हिस्सा मिल रहा है। इसलिए पण्डितों को अपनी जन्म भूमि से बाहर जाना पड़ रहा है। समूचे भारत में इनकी योग्यता का समान हो रहा है। यह लोग सारस्वत ब्राहण होते हुए भी माँसाहारी है, क्योंकि इनकी नीलमत पुराण पर गहरी निष्ठा है। ठण्डी जलवायु के कारण ये अपने को माँस, मछली आदि के प्रलोभन से दूर नहीं रख सकें हैं।

कश्मीर में इस्लाम का आगमन तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में होता रहा और पहले घाटी की हिन्दू जनसंया का शांतिपूर्वक मत–परिवर्तन करने की चेष्ट की गई। लेकिन पठानों के शासनकाल में परिस्थिति बदल गई और तलवार का प्रयोग हुआ, जिसके फलस्वरूप हिन्दू संस्कृति नष्ट–भ्रष्ट होकर रह गई। मुसलमान शासनकाल में जेनुलावदीन बड़शाह तथा मुगल सम्राट अकबर ने कश्मीरियों की बिगड़ी दशा सुधारने का प्रयत्न किया। हिन्दुओं को फिर से पूजा–पाठ करने की अनुज्ञा प्राप्त हुई और इन दो शासकों ने हिन्दुओं के टूटे–फूटे मन्दिरों की मरमत करवाई और अन्य सुविधाएँ दी।

जहाँ हिन्दुओं के शासनकाल में शिक्षा का प्रचार हुआ और सोमानन्द, अभिनव गुप्त कल्हण जैसे पण्डित, दार्शनिक, ज्ञानी तथा कवि प्रादुभार्वी हुए, वहां मुसलमान काल में यहां की हस्तकलाओं का विकास हुआ। कहते है कि शाल, कालीन, पेपरमाशी आदि दस्तकारियाँ जैनुलावदीन द्वारा बुखारा, समरकन्द आदि देशों से ही कश्मीर लाई गई, किन्तु जहां तक शाल के आविष्कार का सबन्ध है, इसका श्रेय बड़शाह को नहीं दिया जा सकता, क्योंकि महाभारत के युग में भी कश्मीरी शालों की चर्चा थी और रोम के जुलियस सीजर के तोपखाने इनसे भरे पड़े थे। इसका संकेत पुराने ग्रन्थों में मिलता है। इस बात में कोई संदेह नहीं कि जैनुलावदीन से पूर्व इन हस्त–कलाओं को नष्ट–भ्रष्ट किया गया था। फारसी और उर्दू के प्रचार को कश्मीरियों ने स्वीकार किया। निर्माण–कला ईरान से प्रभावित हुई और दोनों के समन्वय से नवीन कला का जन्म हुआ। मुगलों के बाग, उनके द्वारा निर्मित मस्जिदें अब भी उन निर्माणकर्ताओं का स्मरण कराती है, जिन्होंने कश्मीर की संस्कृति पर अपनी अमिट छाप डाली है। उनके राज्य काल में कई सूफी कवियों ने भ्रातत्व तथा धार्मिक सहिष्णुता का संदेश गाँव–गाँव में जाकर सुनाया और अपनी कविता से कश्मीरी भाषा के साहित्य भण्डार में वृद्घि की।

कश्मीर में अभी भी पठानों और मुगलों के कुंबे है जो अपने को खाँ और सरदार कहकर पुकारते हैं। वोय और सोखा दो लड़ाकू जातियाँ पूर्वकाल में बारामुल्ला के आस–पास रहती थी और लोगों को भयभीत करती थी। डोगरा शासक गुलाब सिंह ने इनको परास्त कर, घाटी में शांति स्थापित की। डूम और गलवान जो घोड़े पालने और चमड़े का काम करते हैं, अपने को अन्य मुसलमानों से निम्न समझते है। किन्तु अब इनकी आर्थिक स्थिति में परिमार्जन हुआ है। इन्होंने कृषि व्यवसाय की ओर अपना हाथ बढ़ाया है। गड़रिए अपने को चौपान कहते हैं। उनका कार्य भेड़े चराना है, इसलिए सपूर्ण वर्ष पहाड़ों और जंगलों में घूमते फिरते हैं। पर्याप्त हष्ट–पुष्ट है और जंगलों में विचरते जड़ी–बूटियों को एकत्रित करते है। बॉड और भगत का पेशा नाचने–गाने का ही है। मुसलमान लोग शिया और सुन्नी दो वर्गो में बँटे हुए हैं। कई गाँवों में शिया लोगों की बहुतायत है और वे पेपरमाशी इत्यादि का कार्य करते हैं।

कल्हण की राजतरंगिनी में कश्मीर के नाविकों को निषाद कहकर सबोधित किया गया है, जिससे यह पता चलता है कि पहले ये क्षत्रिय थे। अब उन्हें हाजी कहते हैं। ये पर्याप्त परिश्रमी है और अब भी शिकारा, डूंगा या हाऊस बोट चलाने का ही काम

करते है। अब इनकी आर्थिक स्थिति का स्तर उठा है और ये अपने मकानों में निवास करने लगे हैं। नाविकों की भी कई श्रेणियाँ है, डल हाजी जो झील से सब्जी आदि लेकर श्रीनगर आते है, गारी हाजी जो सिंघाड़े बेचते हैं और गाड हाजि जो मछली का व्यापार करते हैं।

वेशभूषा

कश्मीरियों ने अपनी आवश्यकताएँ बहुत कम करना सीखा है। इनके रहन–सहन, खान–पान में साधरणता ही झलकती है। इनका पहनावा एक लबा चोगा–सा फिरन हैं, पाजामा और गोल टोपी। दरिद्रता के प्रयोजनवश प्रायः लोगों में कमीज पहनने की प्रथा नहीं। सर्दियों में कांगरी सेकते है और ऊपर से गर्म ऊनी कबल लोई ओढ़ लेते है। बस यही इनका लिबास है। मुसलमान स्त्रियाँ फिरन और सलवार पहनती हैं। लाल कपड़े की छोटी तहें चढ़ाने से छोटी पगड़ी जैसी बनती है। उसे कसाबा कहते हैं। परतों में सुइयां चुभोकर बन्द कर लेती हैं और ऊपर से ओढ़नी या शाल ओढ़ लेती हैं।

कश्मीरी पण्डितों के फिरन बाजू लबे होते हैं। उनमें चूड़ीदार पजामा और कमीज आदि पहनने का रिवाज है। वे साफा बांधते है। पंडिताइन का फिरन बहुत ढीला होता है, लेकिन रंगीन। उसकी किनारी पर लाल डोरी लगाई जाती है और बाजू पर लाल रंग के कपड़े की छोटी सी पेटी नरिवार लगाई जाती है। इनके सिर का तरंगा मुसलमान स्त्रियों के कसाबे की तरह ही होता है, लेकिन उन पर आभूषण पहनती है। पण्डिताइन का तरंगा जरी आदि मूल्यवान कपड़े का बनता है। तरंगे के ऊपर एक लबी मल–मल की सर्प आकृति से मिलती हुई टोप पहनते हैं, जो पीछे पांव तक लटकती है। उसके ऊपर मलमल की पिछोरी पहनती है या सर्दियों में ऊनी शाल। कुंवारी लड़कियाँ फिरन पहनती है लेकिन सिर पर टोप होता है जिस पर जरी का काम किया होता है।

यह सत्य है कि फिरन कश्मीरियों के आलस्य का कारण है। जनश्रुति है कि फिरन पहनने का रिवाज अकबर के शासनकाल से चला है। कश्मीरियों ने उसके सेनापति कासिम खाँ को परास्त कर भगाया था। जब कश्मीर पर अकबर का राज्य हुआ, तो कश्मीरियों की शूरवीरता का अन्त करने के लिए इन्हें फिरन पहनने पर विवश किया गया। मुगलों के शासनकाल से पूर्व यहाँ छोटा कोट और पजामा पहनने का रिवाज था। शिक्षा के विस्तार और समय परिवर्तन के साथ–साथ लोग फिरन पहनना छोड़ रहे है। अब वे कोट, पतलून और चूड़ीदार पाजामा ही पहनते है, और स्त्रियों में साड़ी और सलवार कमीज पहनने का प्रचार हो रहा है। स्त्रियाँ कई प्रकार के आभूषण पहनती है। मुसलमान स्त्रियाँ तो सिर से पैर तक चाँदी के गहनों में लदी होती है। जहाँगीर की मलिका नूरजहाँ ने कश्मीरियों के लिए अनेक आभूषणों का आविष्कार किया और जैनुलावदीन ने बुखारा और समरकन्द से कारीगरों को बुलाकर इस उद्योग को प्रोत्साहित किया। आभूषणों के नाम प्रायरू संस्कृत और फारसी से लिए मालूम पड़ते हैं जैसे – कण्ठी, टीका, हल्कबन्द, बाजबन्द आदि। टीका तथा जिगनी चांदी अथवा सोने का गोलाकार गहना है जो सिर पर लटकता हुआ नजर आता है। कानों में बालियाँ, दूर, अल्कहोर, झुमके, डेजीहोर आदि पहनने की प्रथा है। पण्डिताइन के सुहाग की निशानी डेजीहोर है। यह अण्डे की शक्ल का खुदाई किया हुआ सोने का छोटा–सा गोला है, जो कानों से सोने की ही मोटी और चपटी एक फुट लबे तालरज से लटकता है। कश्मीरी स्त्रियों के आभूषण बड़े आकर्षक है। वे इनके गीत गाती है। एक महिला अपने बच्चे को इस प्रकार ही लोरी सुनाती हैः–

गुर–गुर करयो कनके दूरो, कनके दूरो,

नैन छय खैल माल, हटि हंजूरो, हटि हजूरो॥

तुझे हिला–हिलाकर लोरी सुना रही हूं। मेरे कान के दूर तुमने खैल–माल पहनी है और गले में हंजूर बाँधा है।

गले का अलंकार हल्काबन्द, तुलसी कण्ठी तथा हार है, किसी में सोने, चांदी की मात्रा कम, किसी में अधिक। ये अलंकार कश्मीरी स्त्रियों के सौंदर्य को चार–चाँद लगा देते हैं। कलाई में पहनने के लिए बुंगर, गुनस और कछकर है एक प्रेमिका अपने प्रेमी को कहती है –

श्रोनीदार बुँगरि नरि लोल गरनावयम्

शोक यानि दिलबरों यान मोरूम

तुहारे ही लिए बाजू में बुंगरी पहनी,

तुहारे ही लिए मैनें यह साज सजाया।

खान–पान

कश्मीरी चावल प्रयोग में लेते हैं। सब्जियों का प्रयोग पर्याप्त करते हैं, लेकिन भारत के अन्य प्रान्तों में जैसे दाल–भात या दाल–रोटी खाने का ही रिवाज है, कश्मीरी ट्टकड़म' साग और भात पर ही निर्वाह करते हैं। माँसाहारी तो है ही, लेकिन प्रतिदिन मांस, मछली, मुर्गा खाने का ऐश्वर्य प्राप्त नहीं होता। ठण्डी जलवायु के होते हुए भी इनको शराब पीने की आदत नहीं है। गाँव में कही मद्य का नाम सुनने में नही आता है। सर्दी में निर्वाह करने के लिए चाय को ही अपना साथी बना लिया है। चाय दो प्रकार की बनती है – कहवा और नमकीन चाय। कहवा एक विशेष सब्ज चाय की पत्तियों को चीनी समेत उबालकर बनाया जाता है और अति स्वादिष्ट होता है। चीनी लोगों की तरह वे चाय में दूध नहीं डालते हैं। चाय हमेशा समावार में तैयार की जाती है। नमकीन चाय पत्तियों को नमक वाले पानी में उबालकर बनाई जाती है। रंग निकल आने के लिए थोड़ा खाने का सोड़ा डाल देते है और घंटा भर उबालकर उसमें फिर पानी तथा दूध डाल देते हैं।

समावार का आविष्कार रूस में हुआ था कश्मीर में भी इसका प्रयोग होता है। रूस से समावार किसी यात्री के हाथों पहुँचा है। यह तांबे या पीतल का गोलाकार सिलेण्डर जैसा पात्र है। जिसमें आठ–दस प्याली पानी आ सकता है। इसके बीच में एक चौड़ी पाईप अथवा नली लगी होती है जिसमें लकड़ी के जलते हुए कोयले डाल देते है। नीचे अंगीठी की तरह जाली होती है जिसमें से वायु अन्दर आती है और कोयले की राख बाहर निकल आती है। कश्मीरी चाय पीने के शौकीन है। काम पर लगे हुए कारीगर एक घण्टे में एक पूरा समावार खाली करके रख देते हैं।

सब्जियाँ आदि तो स्वादिष्ट है ही, लेकिन उनको पकाने का तरीका अलग है। जहां तक मांस आदि पकाने का प्रश्न है, यह कला उन्होंने ईरानियों से मुगलों के शासनकाल में सीखी। कहते है जैसे आम का मजा चखने में ही है, वैसे ही कश्मीरियों की पकाई हुई सब्जियों का आनन्द उनका स्वाद लेने से मिलता है।

रहन–सहन

कश्मीरी मुसलमान हिन्दुओं की अपेक्षा हष्ट–पुष्ट है। कारण यह है कि हिन्दु अधिकतर नौकरी पेशा लोग है और मानसिक परिश्रम करते है, शारीरिक नहीं। प्रायः घर पर भी कार्यालय का काम करते हैं या अपनी सामाजिक कुरूतियों की चर्चा। कभी खेल–कूद मनोविनोद की ओर उनका ध्यान नहीं जाता, इसलिए दुबले पतले और बीमारियों का शिकार होते हैं। कश्मीर जैसे स्थान पर रहते हुए भी वे प्रबल न हो, अजीब सी बात लगती है, मगर है सच। शायद उनकी सामाजिक रूढियां ही इसका प्रयोजन होगी, लेकिन उन्होंने उनके विरूद्घ कभी प्रतिविद्रोह नहीं किया। अगर किसी युवक या युवती ने साहस किया तो उसे समाज में अछूता माना गया। कश्मीरी मुसलमान अभी इन कुप्रथाओं से बचे हुए हैं। मुझे आशंका है कि कश्मीरी पण्डित, इन बन्धनों में जकड़े हुए है, समय की दौड़ में पीछे न रह जाये और अपने गौरवमयी इतिहास को क्षीण स्मृति न बना बैंठे।

कई व्यक्ति यह शिकायत करते हैं कि उन्होंने कश्मीरियों के रहन–सहन में विशेष स्वच्छता नहीं पाई है। इसमें संदेह नहीं कि कश्मीर के गाँव या शहरों के बाजार और गलियाँ गन्दी है, लेकिन वैसी ही दशा भारतवर्ष में और कहीं भी है। नई दिल्ली को ही लें, तो लगता है कि रौखना वृक्ष नरक में ही आ पहुँचे है। इसलिए इस परिस्थिति का यथार्थ रूप में अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं है। भारतवर्ष के करोड़ो लोगों की तरह कश्मीरी दरिद्र है और घरों में मामूली सुविधाएँ भी नहीं है। दरिद्रता सदा अस्वच्छ वातावरण में ही आकर आश्रय लेती है। जिन लोगों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ है उनके घरों में हमाम है और सेकने के लिए विद्युत हीटर। जब पारा हिमांक से नीचे चला जाए तो सर्दियों में प्रतिदिन ठण्डे पानी से क्यों कर स्नान किया जाए। दिल्ली में जाड़े में–जो कश्मीर के बसन्त से सुखकर है–लोग रोज स्नान नहीं करते। जब कश्मीरी के घर पर लकड़ी ही इतनी है कि मुश्किल से खाना तैयार हो, पानी कहाँ से गर्म हो सकेगा? गाँव के लोगों को भ्रम भी है कि रोज स्नान करने से ठण्ड लग जाने का भय है और कुछ सीमा तक है भी सही बात। गाँव का बीमार या तो स्वयं ही ठीक हो जाए या कूच कर जाए, और कोई मार्ग तो है नहीं। अब उनके मिथ्या विश्वास को दूर करना, उनकी सड़के, गलियाँ साफ–सुथरी रखने की जिमेदारी सरकार पर भी है। इस प्रश्न पर जितना ही गहरा विचार करें उतना ही यह उन लोगों की आर्थिक स्थिति से सबन्ध होता प्रतीत होता है।

कई विदेशी लेखकों ने कश्मीरियों के बारे में बहुत जनप्रवाद फैला रखे है। एक विदेशी लेखक ने लिखा है कि वे कांगड़ी गले में लटकाकर चलते हैं, दूसरे का कथन है कि दो कश्मीरी एक ही फिरन में घुसकर सड़कों पर चलते–फिरते नजर आते है। यदि ऐसे मूढ़ लेखकों की आँखों में विदेशी सत्ता की धूल फेंकी गई थी तो उसमें कश्मीरियों का कोई दोष परिलक्षित नहीं होता। कश्मीरियों ने अपनी शूरवीरता की मिसालें ललितादित्य, जैतुलावदीन, जयपीड़ा और अवन्तीवर्मण राजकाल में दी। जब 1947 में पाकिस्तान का आक्रमण हुआ तो इन्होंने फिर अपना शौर्य प्रदर्शित किया। मुगलों, पठानों और मुगलों के समय में उन पर मनमाने अत्याचार हुए और अपनी जान तथा मान की रक्षार्थ उन्हें छल–कपट का संबल लेना पड़ा है।

अशिक्षित होने के प्रयोजनवश अभी कश्मीरियों, विशेषकर ग्रामीणों को पीरों–फकीरों पर विश्वास है। उनके कुछ मूढ विश्वास भी है, ऐसे ही जैसे अंग्रेजो के। कहते हैं कि अंग्रेज दीवार से लगी हुई सीढ़ी के नीचे से नहीं निकलते हैं। कश्मीरी अपने नट–खट बच्चों को खोखा कहकर डराते हैं, क्योंकि पूर्वकाल में खोखा लड़ाकूजाति यहां के लोगों को तंग करती थी। नये कार्य का

श्रीगणेश करने पर अगर किसी को छींक आ जाए तो कश्मीरी पण्डित के मुँह पर मुर्दनी छा जाती है। जब काम पर चले तो पहला प्राणी जो दाई ओर से उसका मार्ग काट कर चला जाए, गाय, स्त्री या पुरोहित नहीं होना चाहिए। अगर अपने सामने से लैस भंगी हरिजन आ जाए तोमान लीजिए कि उसका भाग्य खिल उठा।

हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों के मिथ्या विश्वास थोड़े है, लेकिन वे भूत–प्रेत से बहुत डरते है। वे अल्लाह की कसम खाकर कहेंगे कि उन्होंने रात को राह चौक देखा है, जिसके नाक, कान, मुँह, आँख आदि से आग की लपटे निकलती है। वास्तव में जब वे कब्रिस्तान के पास से रात को निकलते है, फासफोरस की स्फुरदीप्ति को देखकर डर जाते हैं। हिन्दुओं को भी एक अदृश्य व्यक्ति घर देवता पर विश्वास है। उनका विश्वास है कि वह देवता उनके घर की रात्रि में रक्षा करता है। वास्तव में बात यह है कि प्रायरू कश्मीरी मकानों की बरसाती घर का फालतू सामान रखने के काम आती है और बिल्लियाँ अक्सर वहाँ अपना घर बसाती है जो रात को चूहों का शिकार करने निकलती है और इसी दौड़–धूप में द्वार आदि खटखटाती रहती है। लोग समझते है कि देवता ही कभी–कभी उन्हें सचेत करने के लिए द्वार आदि खटखटाता है।

कश्मीरी पण्डितों में खिची अमावस मनाने का रिवाज है। नीलामत पुराण में उल्लेख किया गया है कि प्राचीन काल में यक्ष लड़ाकू जाति यहां के लोगों को तंग करती थी। एक बार लोगों ने उन्हें संदेश भेजा कि वे लूटमार करने की पोष अमावस केदिन उनके यहां आ जाया करें, जहां उनकेलिए भोज आदि का प्रबन्ध होगा। इसलिए खिची अमावस की रात वे अपने घरों से बाहर एक थाली खीचड़ी, माँस, मछली आदि से भरी हुई रख देते थे, जो यक्ष लोग आकर खा जाते थे। यह प्रथा अभी तक चली आ रही है, अन्तर केवल इतना है कि अब यक्ष नहीं आते, उनका स्थान बिल्ली, चूहे और पक्षियों ने ले लिया है।

कश्मीरी महिला

कश्मीरी महिला के सौन्दर्य की प्रशंसा कौन नहीं करता। उसकी सुन्दर नेत्र, लाल कपोल और स्मित की रेखाएँ और सुन्दर मुखाकृति पर कौन लट्टू नहीं होता। उन्हें देख व्यक्ति अपनी दरिद्रता को कोसता है। कितनी ही बार उनके बारे में लिखते समय लेखक अपनी कलाइयों को मेज पर दे मारता है और अपने से यही प्रश्न करता है क्या इनकी गरीबी उनका पीछा नहीं छोड़ेगी। उनकी क्षीण मुस्कान उनके सुडौल शरीर तथा विशिष्ट वक्षरूस्थल को देखकर पूर्ण विश्वास होता है कि ईश्वर की सुन्दरतम कृतियाँ हैं। लेकिन जहां उनके रमणीय शरीर पर रेशमी परिधानों की आवश्यकता थी वहीं चीथड़ों का राज्य है। कितनी देर भाग्य की विडबना इनके सौंदर्य का अपमान करती रहेगी, यह कहना मुश्किल है।

कश्मीरी पण्डिताइन अधिक गौर वर्ण की है, यद्यपि धूप में परिश्रम करने वाली मुसमलमान स्त्रियों के मुंह का हल्का सांवला रंग उनकी सुन्दरता में वृद्घि करता है। लबी और पतली नाक, तनी हुई भौंहे, छोटे होंठ बहुत ही अच्छे लगते है। यह कहना ठीक नहीं होगा कि फिरन पहनने से उनके सौन्दर्य में कमी आ जाती है, यद्यपि सौन्दर्य की नवीन धारणा के अनुकूल इसमें भारी शरीर की वकृता तथा सुडौलपन को उभारने की क्षमता नहीं है। लेकिन कश्मीरियों ने सदा शुद्घ सौंदर्य को ही अपनाया है।

कश्मीरी हिन्दु महिलाएँ अपने घर गृहस्थी के कार्य में रत रहती है, क्योंकि बहुधा अशिक्षित होने के कारण, उन्होंने नौकरी करना नहीं सीखा है। मुसलमान महिलाएँ उनके विपरीत पुरूषों के साथ–साथ काम करती हैं। गाँव में वे कृषि करती हैं, पशु–पक्षियों की देखभाल करती हैं और साथ ही साथ गृहस्थ धर्म का भी पालन करती हैं। नाविकों की महिलाएँ अन्य स्त्रियों से कुछ भिन्न हैं, क्योंकि यह सय भाषा अथवा बर्ताव की रूढ़ियों में जकड़ी नहीं हैं। प्रायः आपस में इतना झगड़ लेती हैं कि आवाज दूर–दूर तक सुनाई देती है, और कभी–कभी वाक युद्घ दिनों तक चलता रहता है, और साथ–साथ घर का काम भी होता रहता है। लेकिन नाविक महिला अपने सौन्दर्य के लिए वियात है।

ग्वालिनें भी अपनी सुन्दरता के लिए चर्चित हैं। ग्वालिन समूची मुसलमान स्त्रियों में सबसे अधिक रमणीय है। डल के नाविकों की स्त्रियाँ स्वयं नाव में सब्जी लेकर शहर में बेचने आती है। प्रतिदिन सुबह वह श्रीनगर के बाजारों में सब्जी की टोकरियाँ लिए घूमती–फिरती दिखाई पड़ती है।

गूजर महिलाएँ एक जाति विशेष से सबन्धित है। बहुत चुस्त और निडर वनों में रहने के कारण इन्हें अनेक जीव–जन्तुओं का सामना करना पड़ता है। अकेली वे रीछ, तेंदूए आदि का मुकाबला करती हैं। पहाड़ों पर एकाकीपन मिटाने के लिए लोकगीत गाती रहती है।

ग्रामीण महिलाएँ कृषि करने के अतिरिक्त धान भी कूटती है। पत्थर की बड़ी ओखली में इन्हें पर्याप्त परिश्रम करके धान कूटना पड़ता है, इस तरह उनका व्यायाम भी होता है जो शहर की स्त्री का धीरे–धीरे फैल रहा है, आशा है कि भारत की अन्य नारियों के साथ इन्हें भी बुद्घि प्रकाश प्राप्त होगा और ये अपने मानसिक, सामाजिक तथा स्वास्थ्य के स्तर को ऊँचा कर पायेंगी।

ग्राय जीवन

बसन्त आया और पहाड़ों पर बर्फ पिघलने लगी। खेतीहर फावड़ा लिये कृषि पर चल पड़ा। पतझड़ के अन्त तक जब उसकी खेती वे तैयार हो जाएगी, उसको अनेक संकटों से मुकाबला करना पड़ता है। उसकी सहनशीलता प्रशंसनीय है और उसकी मेहमानवाजी और धार्मिकता का तो कहना ही क्या? अक्सर गाँव के पास ही खेती होती है। रहने के लिए छोटा मकान है, लेकिन साफ सुथरा नहीं। निचली मंजिल में बैल रखने की जगह है और स्वयं दूसरी मंजिल पर रहता है। सामने ही एक छोटा धान्यागार है जिसमें वर्ष भर केलिए अनाज रखा जाता है। कमरे में घास बिछी होती है और उसके ऊपर घास की ही बनी चटाई। बिस्तर नाम मात्र, मिट्टी की दो–तीन मटकियाँ, एक तांबे का पीतला और समारवार, वही उसकी सपूर्ण सपत्ति है। मकान इतना पस्त है कि खड़ा होकर चला नहीं जा सकता। चूल्हें का धुंआ बाहर निकालने के लिए कोई रोशनदान नहीं। देहातियों का मत है कि रात्रि को सर्दी से बचने के लिए कमरे को धुएँ से गर्म करना जरूरी है। मुर्गिया बहुत पाल रखी है, लेकिन अण्डे सारे शहर में भेज देता है। गाय के दूध से घी बनता है, और उसे मथनेके पश्चात् जो शेष बचता है उसका स्वयं प्रयोग करता है। गाँव में सड़कें नाम मात्र की ही हैं। थोड़ी सी वर्षा होने पर सपूर्ण गाँव दल–दल बन जाता है। गलियों में गन्दा पानी सड़ता रहता है जिसके कारण अनेक रोग फैलते है। देहातियों पर ईश्वर की विशेषकर कृपा है कि कश्मीर में मलेरिया नहीं होता। अस्वच्छ वातावरण में रहने के कारण प्रायरू लोग नेत्र और उदर की बीमारियों का शिकार होते हैं। चेचक, कालरा, टाइफस आदि बीमारियों से भी बच नहीं पाते। प्रायरू ग्रामीण कृषि करते हैं, लेकिन कुछ ऐसे भी है जिनके पास अपनी जमीन भी नहीं है, इसलिए दूसरों के खेतों पर जाकर मजदूरी करते हैं। जहां भूमि की सिंचाई का प्रबन्ध नहीं वहाँ मक्का, गेहूं, जौ आदि उगते है। मकई की खेती जब तैयार होने को होती है और ऊँचे बूटे हवा में झूमने लगते है, तो इन पर रीछ का आक्रमण होता है। रीछ को मक्का बहुत भाती है। इसलिए खेत के खेत नष्ट कर देता है। किसान रात्रि को डोल पीटते हैं। शोर करते हैं और अलाव जलाते है ताकि रीछ से अपनी खेती सुरक्षित रख सके।

कृषि के साथ–साथ वे रेशम के कीड़ों को भी पालते हैं। गाँव में शहतूत के पेड़ों की बहुतायत है। सरकार से रेशम के कीड़ों के बीज लेकर उन्हें पालते है और फिर सरकार को ही बेचते हैं। चूंकि ग्रीष्मकाल में कृषि के कार्य से ही मुक्ति नहीं मिलती, इसलिए घरेलू धन्धों की ओर ध्यान शरद ऋतु में ही जाता है। ग्रामीण् महिलाएँ चरखें पर ऊन या सूत कातती हैं और उसी से कपड़ा बुनती है। वे घास की रस्सियाँ तैयार करती हैं और उनसे मुलहोर जूतियाँ तैयार करती हैं। बर्फीली जमीन पर चलने के लिए यह जूती बहुत ही अच्छी है। शहआबाल और अनन्तनाग के लोग कांगरियाँ बनाने में लग जाते है, और हर साल उनकी बनाई हुई लाखों कांगरियों की खपत होती है। इस प्रकार इन घरेलु धन्धों से बहुत लोगों को जीविका प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त गब्बा, नमदा और कबल लोई बनाने का उद्योग भी सर्दियों में युद्घ स्तर पर चलता है।

खेतीहीन देहाती ही सर्दियों के दिनों में पंजाब आदि प्रान्तों में जीविका ढूंढने जाते है। आजकल कश्मीरी हिमाचल प्रदेश में अपनी आजीविका कमाने आते–जाते रहते हैं। वे मीलों में काम करते, बोझा ढ़ोते और लकड़ी काटते हैं। पतझड़ का अन्त होते ही दक्षिण प्रदेशों की ओर पैदल यात्रा आरभ करते हैं। रात्रि में सड़क पर खानाबदोशों की तरह डेरा डाल देते है और अलाव जलाकर उसके इर्द–गिर्द बैठ ग्राय गीत गाते हैं। देखने में तो ये लोग बलिष्ठ नहीं लगते परन्तु इनकी काम करने की क्षमता आश्चर्यजनक है। कश्मीर से बाहर आते ही वे प्रायरू मलेरिया क शिकार होते है और अत्यन्त दुरूखी जीवन व्यतीत करते हैं। बसन्तकाल में घर लौटने का समय होता है, उस समय इनके पास इतने पैसे नहीं होते कि अपने साथ कुछ चीजें लेते जाएं। मार्ग में चोरों का भी डर रहता है। कभी इन निहत्थे मजदूरों की टोलियों की टोलियां लुट जाती है और यह लोग चीथड़ों में घर लौट जाते हैं।

गाँव में रहते हिन्दू भी कृषि करते हैं, किन्तु अब उनका पेशा दुकानदारी आदि का है। इनका गृहस्थ जीवन अधूरा ही समझना चाहिए। प्रायः देखने में आया है कि कुटुब में ज्येष्ठ भ्राता ही विवाह कर पाता है, और वह भी पर्याप्त पैसा व्यय करने के उपरान्त। अनुज भाई अधिकतर कुंवारे ही रहते है। कारण यह है कि गाँव में कन्याओं की कमी है। पैसे के प्रलोभन में फंसकर उनके माता–पिता शहर के अधेड़ उम्र के रंडुओं से उनका विवाह कर देते है। इस तरह गाँव के बहुत से नवयुवकों को जन्मान्तर ब्रहचर्य व्रत का ही पालन करना पड़ता है। गाँव में विवाह के योग्य युवतियाँ अधिक नहीं मिलती, क्योंकि यौवन में पैर धरने से पूर्व ही उनका विवाह गांव या शहर के धनाढय रंडुओं से हो जाता है। हाँ, हिन्दु समाज की कुप्रथाओं को मूक वाणी में कोसती हुई शहर से लौटी हुई विधवाओं के झुण्ड के झुण्ड मिलते हैं। कश्मीर के देहातियों की समस्या बिल्कुल वही है जो भारतवर्ष के ग्रामीणों की। उनका उत्थान देश की समृद्घि के साथ ही सबन्धित है।

बाहर का प्रभाव

कश्मीरियों की प्रतिभा और कला कौशल पर बाहर का प्रभाव बहुत पड़ा है। विभिन्न जातियों के सैलानी, कई भाषाएँ बोलने वाले, अनेक धर्मों के अनुयायी यहां आते रहे हैं। इस संयोग से कश्मीरियों ने सबके साथ रहना सीखा है। प्रत्येक सैलानी की आवश्यकता को समझा और उचित व्यवहार करना सीखा। उन्होंने भारत के निवासियों के साथ मैत्री से रहने का जो आदर्श उपस्थित किया है, उनकी परिस्थितियों के अनुकूल बन सकने की क्षमता का ही सूचक है।

सैलानियों का प्रभाव कश्मीरियों की कलात्मक प्रतिभा पर गहरा पड़ा। दस्तकारी केनमूने बदलने लगे, क्योंकि नवीन मांग उत्पन्न हुई। शालों को वनस्पतियों के रंगों से रंगने का रिवाज कम हुआ और मशीनी रंगों का प्रयोग होने लगा लेकिन नये रंग

आँखों को सहला न सके। कारीगर जहां कही सोने और चांदी का प्रयोग करते थे, वहां ताबे और लोहेसे काम चलाने लगे। हस्तकला की वस्तुओं की मांग में इतनी वृद्धि हो गई कि उसे कारीगर पूरी न कर सके। कइयों से हस्तकला का श्द्मद्य होता न देखा गया, लेकिन उनकी वस्तुओं की बिक्री कम हो गई।

विवश होकर उन्हें अपने ही हाथों यहाँ की पुरातन कला की अवनति करनी पड़ी। प्रायः कामगारों का लक्ष्य सैलानी ही बनकर रह गया इसलिए उनका ध्यान सस्ती वस्तुओं की मांग पूर्ण करने की ओर गया, किन्तु कई ऐसे कला के पारखी भी आए जिन्होंने असली चीजों की भी मांग की। अगर कश्मीरी कला एवं दस्तकारी की प्रसिद्धि पहले से ही न फैली होती, तो संभव था कि बिल्कुल लुप्त हो जाती। इने–गिने कला प्रमियों के कारण ही यह सदियों की परपरा कायम है।

यह सुनकर आश्चर्य होगा कि कश्मीर के नाविक तथा बिक्री करने वाले टूटी–फूटी अंग्रेजी भी बोल लेते हैं। सर्वप्रथम यूरोपियन सैलानियों ने ही कश्मीर की सुन्दरता की चर्चा की, वित्त का उनके पास कोई अभाव नहीं होता, इसलिए उनसे अधिकाधिक लाभ उठाने के लिए कश्मीरी लोगों ने विदेशी भाषा सीखी। कोई–कोई अच्छी खासी अंग्रेजी बोल लेता है। प्रान्तीय भाषाओं में तो वे निपुण ही है। यूरोप से आए हुए सैलानियों के साथ मेल–जोल के कारण इन्होंने कूटनीति सीखी और विषय को तुरन्त समझने के कौशल से परिचित हुए। कश्मीरी लोगों की धनाढ्य तथा दरिद्र, पण्डित और मूढ, रईस और मामूली लोग, कटु अथवा मीठे स्वभाव के लोग, बूढ़े और जवान सबसे ही भेंट होती रही है। नाना प्रकार के लोगों के मन को तोड़ने या उनकी आवश्यकताएँ समझने में उन्हें तनिक भी मुश्किल नहीं होती है।

उत्सव

उत्सव साधारण तरीके से मनाने के लिए कश्मीरी लोग भारत के अन्य लोगों से आगे है। शादी–विवाह के अवसर पर यहाँ आतिशबाजी चलाने, बैंड–बाजा बजाने या दीपमालिका करने की प्रथा नहीं है। कश्मीरी पण्डितों की बारात में चाहेदो सौ आदमी हों, लेकिन शोर नहीं होता, मुसलमानों के विवाह का उनके सगे–सबन्धियों के अतिरिक्त किसी को पता नहीं चलता। केवल महिलाओं के मधुर–गान की ध्वनि ही सुनाई पड़ती है, जो उपयुक्त वातावरण की ध्वनि में सहायक होती है।

कश्मीरी पण्डितों का यज्ञोपवीत संस्कार एक बड़ा उत्सव माना जाता है। यज्ञोपवीत से कई दिनों पूर्व ही तैयारी प्रारभ हो जाती है। रात को लड़के के हाथ मेहन्दी से रंगे जाते है। दूसरे दिन प्रातरू शास्त्रानुकूल उसका स्नान आदि होता है। तीसरे दिन बड़ा होम किया जाता है और पुरोहित द्वारा बच्चे को यश सूत्र पहनाया जाता है। इस दिन सपूर्ण सगे–सबन्धी एकत्रित हो जाते हैं और अपने साथ उपहार ले आतें है। आजकल नकद रूपया देने की प्रथा चल पड़ी है। हर एक रिश्तेदार पुरोहित के दानपात्र में कुछ न कुछ डालकर ही जाता है। लड़के की मौसी, फुफी और मौसी मेहमानों का स्वागत करती है और दूध–चाय, मिठाई से उनकी आवभगत करती है।

कश्मीरी अपने त्यौहार धूम–धाम से मनाते हैं। जगह–जगह मेले लगते हैं। जहां कश्मीर की हस्तकला की प्रदर्शनी भी लगती है। लोग टोकरियाँ, कबल, मिट्टी के बर्तन, सस्ते अलंकार आदि क्रय करते हैं। ईद और शिवरात्रि के दिन हिन्दू और मुसलमान गले मिलते है, और इसी प्रकार आपस के भाई चारे की मर्यादा को कायम रखते हैं।

सुझाव पुस्तकें

1. एच. एस. सुरजीत, **काश्मीर एण्ड इट्स फ्रयूचर**, ;देहलीः 1955
2. जे. एन. साहनी, **दि काश्मीर प्रॉब्लम**, ;देहलीः 1951
3. सी. पी. श्लाइसर एण्ड जे. एन. बैन्स, **रि–एडमिनिस्ट्रेशन ऑपफ इण्डियन पफॉरेन पोलिसी थ्रू दि यूनाइटेड नेशन्स**, ;1969
4. भारत सरकार पब्लिकेशन डिविजन : **इण्डियन मुस्लिम व्यूज ऑपफ काश्मीर स्टेटमेण्ट्स एण्ड रिजोलूशन्स बाई मुस्लिम आर्गेनाइजेशन्स ऑपफ इण्डिया**, ;देहलीः 1951
5. रिचर्ड पाल, **इण्डिया दि पीसमेकर : ए सोलूशन ऑपफ दि काश्मीर प्रोब्लम**, ;मद्रासः 1951
6. **राजस्थान पत्रिका**, 26 जनवरी 1996
7. के. के. मिश्रा, **काश्मीर एण्ड इण्डियाज पफॉरेन पोलिसी**, ;देहलीः 1979
8. एम. एस. एस. मसूदी, **काश्मीर थ्रू मुस्लिम आइज**, ;श्रीनगरः 1951
9. बलराज माधेक, **काश्मीर : सेण्टर ऑपफ न्यू एलाइमेण्टस**, ;देहलीः 1963
10. **इण्डिया टुडे**, मई 1997,
11. जी. एन. एस. राघवन, **काश्मीर ऑन दि मार्च**, ;श्रीनगरः 1956
12. **दि टाइम्स ऑपफ इण्डिया**,1999